मीमांसा दर्शन में ईश्वर विचार

ईश्वर के अस्तित्व को लेकर मीमांसकों में मतभेद हैं। सामान्यत: मीमांसा दर्शन को अनीश्वरवादी क
जाता है। मीमांसा दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि जैमिनी ने ईश्वर के अस्तित्व के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया
अन्य मीमांसक भी कर्म सिद्धान्त की सहायता से ही जगत की व्याख्या करना चाहते हैं। इनके अनुसार कर्म
फल तो यज्ञ से मिलता है। ये ईश्वर को जगत का सर्जक नहीं मानते। इनके अनुसार जगत की सृष्टि तो प्राकृति
है। जगत के समस्त क्रिया कलाप प्राकृतिक हैं। इनके अनुसार ईश्वर को जगत का रचयिता, पालनकर्त्ता, संहा
आदि कहना भ्रामक है। ये वेदों के सर्जक के रूप में भी ईश्वर को नहीं मानते क्योंकि वेद तो अपौरूषेय
स्वत: प्रकाश हैं और स्वत: प्रमाण हैं। ये ईश्वर को कर्मफलदाता भी नहीं मानते। कर्मफलदाता के रूप में
अपूर्व नामक शक्ति की कल्पना करते हैं। इन्होंने धर्म की स्थापनार्थ भी ईश्वर को आवश्यक नहीं माना है क्यो
इस हेतु स्वयंभू वेद उपस्थित हैं।

मीमांसा दर्शन को बहुदेववादी या अनेकेश्वरवादी भी कहा जाता है क्योंकि इसमें अनेक देवों का उल्ले
हुआ है लेकिन वस्तुत: इन देवों का वस्तुनिष्ठ अस्तित्व नहीं है। अनेक देवों की परिकल्पना यज्ञ में आहुति प्र
करने के लिए की गयी है। उपासना के लिए उनका स्वीकरण नहीं है। इन देवों की स्वतंत्र संज्ञा नहीं मानी
है। कतिपय विद्वानों ने देवताओं को महाकाव्य के अमर पात्र की तरह माना है अत: वे आदर्श पुरुष कहे
सकते हैं। इस प्रकार मीमांसा दर्शन को बहुदेववादी या अनेकेश्वरवादी कहना भ्रामक है। मीमांसा दर्शन
देवताओं के बजाय मंत्रों पर अधिक ध्यान दिया गया है।

बाद के मीमांसकों ने मीमांसा में ईश्वर की कल्पना की है। उन्होंने ईश्वर को कर्म का संचालन और क
का फल देने वाला माना है। लौगाक्षि भास्कर ईश्वर को जगत का कर्त्ता, धर्त्ता और हर्त्ता, जीवात्माओं
अन्तर्यामी तथा जगत का नैतिक शासक मानता है। कुमारिल ने अपने ग्रन्थों का प्रारम्भ शिव की प्रार्थना से कि
है और इन्हें सर्व पुरुष कहा है। उन्होंने कहा है कि शब्द ब्रह्मरूपी वेदशास्त्र एक ही परमात्मा द्वारा अनुस्यूत
और वही इसका अधिष्ठान है। प्रभाकर उस ईश्वर को मानते है जो श्रुतिमूलक वाक्यों द्वारा प्रमाणित किया
सके। मैक्समूलर मीमांसा दर्शन को निरीश्वरवादी नहीं मानते। इनके अनुसार वेदों में विश्वास आस्तिकता क
मुख्य पहचान है। मीमांसा दर्शन वेदों पर आधारित दर्शन है और वेद ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते है
मीमांसा दर्शन के विभिन्न सूत्र भी ईश्वर में विश्वास की धारणा की ओर संकेत करते हैं। ईश्वर के लि
'सर्वशक्ती' शब्द का प्रयोग सूत्र 6/3/1 में मिलता है—सर्वशक्तौ प्रवृत्ति: स्यात्तथा भूतोपदेशात् अथा
सर्वशक्तियों के स्रोत ईश्वर की ओर प्रवृत्त होना प्राणियों का धर्म है। इसी प्रकार ईश्वर की श्रेष्ठता के सम्बन्ध
मीमांसा सूत्र 6/3/3 में कहा गया है—"तदकर्मणि चक दोषस्तत्रमास्तती विशेष: स्यात्प्रधानेनाऽपि सम्बन्धात

अर्थात् जो कर्म ईश्वर की प्राप्ति के लिए नहीं किया जाता उससे उदासीन रहकर किया जाता है। वह वेद के मतानुसार सदोष और निष्फल होता है। वही कर्म उत्तम है जिसका सम्बन्ध ईश्वर से हो। इस प्रकार मीमांसा दर्शन को कुल मीमांसक निरीश्वरवादी मानते हैं तो कुछ इसे ईश्वरवादी स्वीकार करते हैं।

मीमांसा दर्शन का कर्मफल सिद्धान्त

जैमिनी के मीमांसा सूत्र का प्रथम सूत्र है—''अथातो धर्म जिज्ञासा'' अर्थात् अब धर्म पर विचार किया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मीमांसा का प्रधान विषय धर्म है। प्रारम्भ में मीमांसा के अनुसार धर्म का लक्ष्य स्वर्ग की प्राप्ति था। **जैमिनी** और **शबर** का मत था कि स्वर्ग ही जीवन का चरम लक्ष्य है। स्वर्ग की प्राप्ति कर्म के द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार मीमांसा दर्शन में धर्म की प्राप्ति का प्रमुख साधन कर्म बताया गया है। मीमांसकों के अनुसार कर्म का अर्थ वेदों में बतायें गये कर्म से है। वेद-विहित कर्म की मीमांसा के अनुसार धर्म है। मीमांसा वैदिक कर्मकाण्ड को ही धर्म मानता है। मीमांसा मत में कर्म का एकमात्र श्रोत वेद वाक्य है। वेद वाक्य में ही निष्काम कर्म का आदेश देते हैं वेद हमें केवल धर्माधर्म की ही जानकारी नहीं देते वरन् धर्म के आचरण और धर्म के परित्याग से होने वाले इष्टफल की जानकारी भी देते हैं। ऐसे कर्म जिनके अनुष्ठान से वेद सहमत नहीं हैं और जिन कर्मों का वेदों में निषेध किया गया है, उनका परित्याग आवश्यक है। मीमांसकों के अनुसार कर्म ही व्यक्ति को बन्धन में डालते हैं और कर्म ही उसे बन्धन मुक्त: करके मोक्ष दिलाते हैं। शुभ और उचित कर्मों के द्वारा ही व्यक्ति मोक्षप्राप्त कर सकता है। इस प्रकार मीमांसा दर्शन में वेदविहित कर्मों पर अत्यधिक बल दिया गया है। वैदिक आदेशों के अनुसार किए गए नए कर्म शुभ और उचित हैं और इसके विपरीत किए गए कर्म अशुभ और अनुचित हैं।

मीमांसा दर्शन में पाँच प्रकार के कर्मों का उल्लेख हुआ है—

1. नित्य कर्म—जिन कर्मों को व्यक्ति को नित्य ही करना पड़ता है, नित्य कर्म कहलाते हैं, जैसे—स्नान, ध्यान, सन्ध्या, पूजा आदि। इन कर्मों के करने से पुण्य संचय नहीं होता लेकिन इनके न करने से पाप का उदय होता है।

2. नैमित्तिक कर्म—जिन कर्मों को व्यक्ति विशेष अवसरों पर करता है, नैमित्तिक कर्म कहलाते हैं; जैसे—ग्रहण के समय गंगा नदी में स्नान करना। जन्म, मृत्यु, विवाह आदि अवसरों पर किये जोने वाले कर्म नैमित्तिक कर्म हैं। इन कर्मों के करने से कोई विशेष लाभ नहीं होता लेकिन इनके न करने से पाप का उदय होता है।

3. काम्य कर्म—जिन कर्मों को इच्छा विशेष की पूर्ति या निश्चित फल की प्राप्ति के लिए किया जाता है, काम्य कर्म कहलाते हैं; जैसे—पुत्र की प्राप्ति,यश की प्राप्ति, धन-सम्पत्ति की प्राप्ति, स्वर्ग की प्राप्ति आदि के लिए किये जाने वाले यज्ञ, हवन, बलि या अन्यकर्म। इन कर्मों को करने से पुण्य मिलता है लेकिन न करने से पाप का उदय नहीं होता।

4. निषिद्ध कर्म—जिन कर्मों को करने से व्यक्ति को निषेध होता है, निषिद्ध कर्म कहलाते हैं। इन कर्मों को न करने से पुण्य भले ही न मिले लेकिन इनके करने से व्यक्ति पाप का भागी अवश्य बनता है।

5. प्रायश्चित कर्म—निषिद्ध कर्म करने पर उसके अशुभ फल से बचने के लिए कर्म किया जाता है, वह प्रायश्चित कर्म कहलाता है। प्रायश्चित कर्म से बुरे कर्मों का प्रभाव कम हो जाता है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार व्यक्ति को कर्म इसलिए करना है क्योंकि यह वेदों का आदेश है। किसी इच्छा की पूर्ति या फल की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को कर्म नहीं करना है। कर्म 'कर्त्तव्य' के रूप में करना चाहिए न कि फल विशेष की प्राप्ति के लिए। इस प्रकार मीमांसा का कर्म सिद्धान्त गीता के निष्कान कर्म से मिलता-जुलता हैं।

गीता में भी कहा गया है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'—अर्थात् कर्म करना ही तुम्हारा अधिकार है, फल की चिन्ता मत करो। मीमांसा और कान्ट के कर्म सिद्धान्त में भी कुछ समानता पायी जाती है। मीमांसा की तरह कान्ट यह मानता है कि कर्म कर्त्तव्य के लिए (Duty for Duty's Sake) होना चाहिए। भावनाओं या इच्छाओं की पूर्ति अथवा किसी फल की प्राप्ति के लिए नहीं। इस समानता के होते हुये इनमें कुछ अन्तर भी है—(1) कर्मफल का वितरण करने के लिए जहाँ कान्ट ईश्वर की मीमांसा करता है, वहाँ मीमांसा दर्शन अपूर्व सिद्धान्त को अपनाता है (2) कर्त्तव्य का मूल स्रोत जहाँ कान्ट आत्मा के उच्चतर रूप को मानता है, कहाँ मीमांसा दर्शन वेदों को मानता है।